हिन्दी साहित्य के बदलते परिदृश्यः दशा एवं दिशा

29

डॉ. वंदना पाण्डेय*

मानव चेतना, मानव–संबधों से निर्मित तथा उससे उत्पन्न चेतना है। मानव–सम्बन्ध समाज के विकास के साथ परिवर्तित होते रहते है तथा समाज की विशेष स्थितियों की विशेषताएं साहित्य के माध्यम से प्रकट होती हैं। 'हमारी संस्कृति में साहित्यिकों और कवियों को ऊंचा स्थान दिया है। हजारों वर्षों से वाल्मीकि, व्यास की जितनी सत्ता चली उतनी किसी और की नहीं चली और उनकी यह सत्ता केवल धर्म तक ही सीमित नहीं रही रही है पारलौकिक एवं परमार्थिक जीवन पर भी रही। यानी कुल जीवन पर उनकी सत्ता है।[1] समाज के परिवर्तन के साथ ही मानव सम्बन्धों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है तथा साहित्य की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन होता है। जीवन की पुर्नरचना कलाकृति के रूप में जीवन का प्रतिनिधित्व करती है जो लेखक द्वारा अनुभव किया जाता है। यह व्यापक जीवन–फलक जितना आन्तरिक है उतना ही बाहय है। मुख्य बात यह है कि संवेदनाएँ, भावनाएँ, बोधशक्ति, परस्पर सहकार करके उसे अलग दुनिया में ले जाती है जो कल्पना से जुड़ी है लेकिन वह वास्तविक जगत के रंगों से ही बनी है। हमारे आस–पास जीवन के विविध रंग बिखरे हुए हैं। सर्वत्र उसके दृश्य फैले हुए हैं किन्तु उनमें से हमारे लिये वही महत्वपूर्ण है जो हमारी इच्छा तृप्ति के कार्य पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं हम उनका संकलन साहित्य के माध्यम से करते है। श्रेष्ठ साहित्यकार समय के अनुरूप साहित्य रचना समाज को गति देते रहते हैं। कबीर की वाणी को सुनकर व्यक्ति दुनिया की बुराइयों को देखना भूल स्वयं को सुधारने में लग जाता है। जो पुराने समाज की बुराई छोड़कर अच्छाई का मार्ग दिखाता है, उसे नए विचार के रूप में प्रवेश कराता है, वही सच्चा साहित्यकार होता है। सूर के भक्ति के गीतों को सुनकर समाज मगन हो जाता है। मीरा के भजनों को गाकर वह मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो जाता है। ज्ञानेश्वर, तुकाराम जाने ऐसे कितने नाम हैं जिनके साहित्य ने समाज को उच्च आदर्श की ओर बढ़ाया। शेक्सपियर होमर, तुलसी, निराला, रवींद्रनाथ ऐसे जाने कितने साहित्यकार आए जिन्होंने समाज को एक नई राह दिखाई। समाज में साहित्य के द्वारा ही सामाजिक क्रांतियां हुईं उसके पीछे विचारक और साहित्यिक थे जिनमें क्रांति बोध था। 'साहित्य की सामाजिकता' पुस्तक में लिखा है, 'अब भी समाज को साहित्य ही बचा सकता है। निरंतर संवेदनहीन भोगवादी, अराजक और बाजारू होते संसार को फिर से साहित्य ही मानवीय और मर्यादित कर सकता है... जिस साहित्य में समाज के यथार्थ रूप से अधिक आदर्श रूप की प्रतिष्ठा होती है वही साहित्य अधिक महान होता है।[2]

साहित्य तथा समय के परस्पर संबंध के विषय में मूलभूत जिज्ञासा एक ऐसा तत्व है जो ऐतिहासिक विकास की मानवीय प्रक्रियाओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति की

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)

खोज करना चाहता है। निश्चित रूप से साहित्य विश्लेषण के लिये ऐसी जिज्ञासा को मनुष्य जीवन के सभी पक्षों का अध्ययन करना आवश्यक होता है। साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन हैं। व्यक्तिगत मनोभावों का जन सामान्य में प्रचलित होता है। बिकी हुई मेहनत, बेसहारा जिंदगी की आकाक्षाएँ सामाजिक उलझनों से होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति परिस्थिति की संवेदनाएं जब लोकमुक्ति की नई भावधारा से और भी सशक्त और भी संवेदनमय हो जाती है, तब जिस साहित्य का अविर्भाव होता है उसमें महान 'मनुष्य सत्य' होता है। साहित्य ने लोक जीवन की दशा और दिशा बदलने का काम किया है। समाज को सुसंस्कृत बनाने का काम साहित्य ही करता है, उसमें सौंदर्य बोध जागृत करता है, यहां तक कि उसको अनुशासित और मर्यादित भी साहित्य ही करता है। समाज को नया मोड़ देने में विज्ञान शक्ति, आत्मज्ञान शक्ति और साहित्य शक्ति से विशेष मदद मिलती है। लोकजीवन पर स्थाई असर डालना उन्हीं से बन पड़ा जिन्होंने कुछ आध्यात्मिक खोज की या वैज्ञानिक। लोक जीवन पर सबसे अधिक असर डालने वाली शक्ति हैदृ साहित्य की शक्ति।[3] वास्तविक स्थिति यह है कि शोषण के खिलाफ संघर्ष, शोषण से छुटकारा, दैनिक जीवन का संघर्ष, मानसिक सांस्कृतिक उन्नति के लिये समय और विश्राम की सुविधा, व्यवस्था की स्थापना जब तक नहीं होती तब तक शत–प्रतिशत जनता साहित्य का पूर्ण उपयोग नहीं कर सकती न ही उससे पूर्ण रंजन ही कर सकती है क्योंकि जनता के जीवन मूल्यों तथा जीवनादर्शों को दृष्टि में रखकर जो साहित्य निर्माण होता है वह यद्यपि व्यक्ति की लेखनी द्वारा उत्पन्न होता है परन्तु उसका उत्तरदायिल मात्र व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक उत्तरदायित्व है।

साहित्य का विकास मूलतः समाज के विकास पर अवलंबित है। अभिप्राय यह है कि जिन सामाजिक ऐतिहासिक शक्तियों की अभिव्यक्ति मात्र वे घटनाएँ है वे ताकतें ही साहित्य के स्वरूप, तत्व तथा विचार को जन्म देती तथा विकसित करती रहती है, समाज के विकास द्वारा तथा परिवर्तन के साथ ही साहित्य में उस विकास, ह्रास अथवा परिवर्तन का स्वरूप ही नहीं दिखाई देता वरन् साहित्य स्वयं इस विकास द्वारा तथा परिर्वतन का अंग हो जाता है परन्तु साहित्य का समाज से संबंध यांत्रिक नहीं बल्कि अन्योन्याश्रित है। हासकालीन पूँजीवादी समाज में शोषक वर्ग होता है तो दूसरी और क्रांतिकारी शोषित वर्ग ही सिर उठाता है जो लेखक इन दोनों तत्वों को देखता है और उस क्रांतिकारी शोषित वर्ग की हिमायत करता है उसका साहित्य हर संदर्भ में प्रासंगिक है क्योकि समाज के विकास के साथ मनुष्य की मनोवैज्ञानिक समृद्धि, आन्तरिक तथा बाहय स्वाधीनता तथा मानवीय दृष्टिकोण का विकास होता जाता है तथा मनुष्य की आन्तरिक तथा बाह्य समृद्धि बढती जाती है। अतः साहित्य में प्रतिष्ठित मानव स्वरुप के तत्वों की दृष्टि से बाद के समय का साहित्य पूर्वकालीन साहित्य से परिवर्तित स्वरूप में मिलता है जो कि स्वाभाविक भी है। इस संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद साहित्य की कसौटी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं जिनके साहित्य के विषय के रूप में कहा जाता है के यदि 1930 से 1936 तक भारत का इतिहास किसी कारणवश मिट भी जाता है तो उनके साहित्य के माध्यम से भारत का इतिहास लिखा जा सकता है। आज इतने समय बाद भी गोदान का पात्र होरी देश के लाखों गांवों में मिल जाएगा, कर्मभूमि की भूमि समस्या आज भी हमारे सामने मुंह खोले खड़ी है, रंगभूमि का

पूंजीपति वर्ग गरीबों की जमीन पर दांत गड़ाए बैठा है तो बूढ़ी काकी आज भी वृद्धाश्रम में जीने का अवसर ढूंढ रही है, नमक के दरोगा का भ्रष्टाचार आज देश के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। गांव में बसने वाला पंच परमेश्वर आधुनिक कोर्ट कचहरी में गुम हो गया है। प्रेमचंद कहते भी हैं; 'साहित्यकार बहुधा अपने देश काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस विकलता में वह रो उठता है पर उसके रुदन में व्यापकता होती है वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।[4]

आज के समय में साहित्य का कार्य है कि वह जनता की बुद्धि तथा स्वयं की भूख प्यास को जगाये तथा उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करने के लिये ऐसी कला का विकास करे जिससे जनता प्रेरणा प्राप्त कर सके तथा साहित्य स्वयं जनता से प्रेरणा ले सकें। जो जाति राष्ट्र जितना स्वाधीन है उसकी जनता शोषण और अज्ञान से संघर्ष करते हुए शक्ति सौन्दर्य तथा मानवादर्श के समीप पहुंचती है। आज की दुनिया में जिस हद तक शोषण बढा हुआ है उसी हद तक ह्रदय की मूख और प्यास भी बढ़ी हुई है। हमारे उत्पीडित मध्यवर्गीय सचेत युवकों के कष्टों का इतिहास केवल तात्कालिक व्यक्तिगत आर्थिक कारणों से ही नहीं बल्कि अनेक पुरातनपन्थी संस्कारों तथा विचारों तथा संघर्ष की रक्ताभ वेदनाओं से आच्छन्न हैं। परिणाम यह होता है कि लेखक माननीय संघर्षों में गहरी दिलचस्पी लेता है तथा मानव–जीवन ही उसका मूल विषय हो जाता है तथा इस जीवन की प्रेरणाएं उसे बेचौन करती हैं तथा वह सृजन की ओर प्रवृत्त होता है।

वास्तव में देखा जाये तो साहित्यबोध एक कला है जिसमें सहित का भाव भी साहित्य का धर्म भी है तथा मानव समाज की बुनियाद भी है। साहित्यकार अपने आस–पास की दुनिया को समझकर उसे बेहतर बनाने की चेष्टा करता है। आधुनिक संदर्भों में देखा जाये तो साहित्य आत्मचेता होकर विकास, समृद्धि तथा परिष्कार के लिये संघर्ष कर रहा है। वास्तविकता की कठोर चट्टान से संघर्ष करता हुआ साहित्य, जीवन तथा जगत के प्रति सचेत और जागरुक होकर समाज को कर रहा है। वर्तमान समय में सर्वोच्च आदर्शों तथा सर्वश्रेष्ठ मूल्यों को आत्मसात करने में साहित्य की प्रासंगिकता उल्लेखनीय है। यही कारण है कि आदर्श–पथ पर साहित्य प्रेरणा रुप में सहायक है तथा साहित्य के माध्यम से ही मूल्य पीढ़ियों तक संचरित होते हैं तथा शाश्वत बने रहते है।

संदर्भ

1. विनोबा साहित्य खंडदृ 12 (भाग–1), साहित्य और आत्मज्ञान दृविज्ञान परंधाम प्रकाशन 1998, पृष्ठ 75
2. हिंदी साहित्यरू युग और धारा, कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, भारती भवन प्रकाशन, पटना, पृष्ठ 5
3. विनोबा साहित्य खंडदृ 12 (भागदृ1), साहित्य और आत्मज्ञानदृ विज्ञान, परंधाम प्रकाशन 1998, पृष्ठ 3
4. मुंशी प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, शिवरानी प्रकाशन, पृष्ठ 2425